



प्रेमचंद साहित्य में अछूत समस्या का विवेचन

डॉ. मनीष मेश्राम

सहायक प्राध्यापक

स्कूल ऑफ बुद्धिस्ट स्टडीज़ एंड सिविलाइजेशन

गौतम बुद्ध यूनिवर्सिटी,

ग्रेटर नोएडा, उत्तर प्रदेश

शोध संक्षेप

प्राचीन काल से लेकर वर्तमान काल तक अछूतपन की समस्या भारतीय समाज में कैंसर की बीमारी की तरह व्यक्ति व समाज को खोकला करती आ रही है। तथागत बुद्ध ने सर्वप्रथम इस समस्या को जड़ मूल से नष्ट करने का प्रयास किया था। उसी पथ का अनुसरण करते हुये आधुनिक युग में बाबासाहेब अम्बेडकर ने धम्म-क्रान्ति के द्वारा अछूत समस्या को नष्ट करने का प्रयास किया। इसी आधुनिक युग में हिन्दी साहित्य के द्वारा अछूत समस्या का विवेचन प्रेमचंदजी के साहित्य में अभिव्यक्त होता है। जिससे जन जागृति करने का कार्य उनके उपन्यासों, कहानियों के द्वारा समाज की अछूत की समस्या का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करने का सफल कार्य प्रेमचंदजी ने किया है। प्रेमचंद एक लम्बे अरसे तक गांधीवाद की गिरफ्त में रहे, यह उनकी लेखकीय श्रेष्ठता का एक और प्रमाण है की उन्होंने इस गिरफ्त के खिलाफ अपने वैचारिक लेखन में संघर्ष किया और आजादी हासिल की बल्कि अपने सर्जनात्मक लेखन को गांधीवादी शिकंजे से आजाद रखा। प्रेमचंद के विचारों में अछूत समस्या का विवेचन करना ही इस लेख का उद्देश्य है।

प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य जगत में वे प्रेमचंद नाम के विख्यात हैं, इनका असली नाम धनपतराय था। इनका व्यक्तित्व सहज सरल परंतु असाधारण है। स्वयं प्रेमचंद लिखते हैं, “मेरा जीवन सहज, समतल मैदान है, जिसमें कहाँ-कहाँ तो टीलों, पर्वतों, घन जंगलों, गहरी घाटियों और खंडहरों का स्थान नहीं हैं। प्रेमचंद का बाहरी व्यक्तित्व औपनिवेशिक शासन के एक आम भारतीय आदमी का व्यक्तित्व है। अमृतराय के शब्दों में, “उनमें कुछ तो इस देश की पुरानी मिट्टी के संस्कार हैं, कुछ उनका सच्चा आत्मगौरव है।” प्रेमचंद को युग प्रवर्तक स्वप्नकार कहा गया है।

अनेक युग प्रवर्तन के तमाम संदर्भों में एक महत्वपूर्ण संदर्भ यह है कि उन्होंने उपन्यास और गल्प कहे जाने वाले किस्से कहानियों से ऊपर उठकर मनुष्य के चरित्र चित्रण को अपने लेखन का विषय बनाया। प्रेमचंदन का जन्म 31 जुलाई सन 1880 में हुआ। उनके रचना कर्म की शुरुआत पहले दशक में हुई। प्रेमचंद ने पहली बार हिन्दी कथा साहित्य को मनोरंजन के स्तर से उठकर जीवन के साथ सार्थक रूप में जोड़ने का काम किया। विशेषतः उनके उपन्यासों में अपने युगीन परिवेश में फैले हुए जीवन और उससे जुड़ी अनेक समस्याओं को उठाते हुए उनका यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करने में इन्हें

सफलता प्राप्त हुई है। इस तथ्य को ओर संकेत करते हुए डॉ. धीरेन्द्र वर्मा अपने विचार इस प्रकार व्यक्त करते हैं। प्रेमचंद हिन्दी के प्रथम सर्वोत्कृष्ट मौलिक लेखक हैं। उन्होंने हिन्दी पाठकों की अभिरुचि को चंद्रकान्ता के गर्त से निकाल कर सुदृढ़ साहित्य की नींव पर स्थिर किया। प्रेमचंद ने समाज के असाधारण वर्गों को ओर से दृष्टि हटाकर मध्यम तथा निम्न श्रेणी के लोगो की नित्य जीवन की समस्याओं की ओर हिन्दी पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया। यथार्थ के इस व्यापक चित्रण के कारण, उनके उपन्यास अत्यंत श्रेष्ठ माने गए और प्रेमचंद को उपन्यास सम्राट के रूप में ख्याति मिली।" उपन्यास को परिभाषित करते हुए प्रेमचंद ने लिखा है "उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र-मात्र समझाना ही मानवचरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना उपन्यास का मूल तत्त्व है।" अपने पारिवारिक जीवन की विसंगतियों को सहन करते हुए उन्होंने अपने युग की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक समस्याओं का जीवंत चित्रण किया है। प्रेमचंद के जीवन से जो लोग भली भांति परिचित हैं, वे जानते हैं कि जिस घर-परिवार में वे पैदा हुए उसमें और उसके परिवेश में ऐसा कुछ नहीं था जो उन्हें लेखक बनने की प्रेरणा दे सकता। पिता डाकखाने के मुंशी, खस्ता आर्थिक हालत, भरा-पूरा संयुक्त परिवार, घर में विमाता का राज्य और ढेर सारी परेशानियों का बोझ। ऐसे में जीवनकोपार्जन का कोई साधन खोजकर कोई भी गृहस्थी की गाड़ी को आगे बढ़ा ले जाने में ही जीवन की सार्थकता मान सकता था। किंतु ऐसे परिवेश में भी प्रेमचंद ने लेखक बनने का सपना देखा, बचपन के अभावों की पूर्ति परियों और

राजकुमारियों के काल्पनिक किस्सों में पाई, स्कूल और मदरसे से कहीं ज्यादा जिंदगी की पाठशाला से सीखा। जब पिता की मृत्यु हुई तो वे नवीं कक्षा के छात्र थे, उनका विवाह हो चुका था और उनके ऊपर अपनी पत्नी के अलावा विमाता तथा उनके दो पुत्रों के भरण पोषण का बोझ था। व्यक्तिगत जिंदगी की इस अंधेरी सुरंग के घुटन भरे अंधियारे से उन्हें नजात मिलती तो अपने यार-दोस्तों की महफिल में जिनकी संगति में उन्होंने ढेरों उपन्यास और किस्से कहानियां पढ़ डाले। 'तिलिस्म होशरूबा' तो गोरखपुर में पिता के रहते ही उन्होंने चाट डाला था। उपन्यास तथा किस्से-कहानियों के इस चस्के का एक लाभ तो यह हुआ कि घर परिवार की कलह से प्रेमचंद की चेतना दग्ध होने से बची रही, दूसरे इन किस्से-कहानियों ने उनकी कल्पना शक्ति को मांज निखारकर चमका दिया और उनके मन में भी लेखक बनने की होंस पैदा की। घर परिवार की गाड़ी को किसी तरह खींचते हुए सन 1910 में प्रेमचंद ने इंटर की परीक्षा भी पास कर ली, मुदरिसी तो वे मैट्रिकुलेशन पास करने के बाद ही करने लगे थे। आगे चलकर उन्होंने बी.ए. भी पास किया। अब तक वे संयुक्त प्रांत की सरकार के शिक्षा-विभाग में कई वर्षों का अनुभव पा चुके थे। मैट्रिकुलेशन के आसपास ही उनका लेखकीय जीवन प्रारंभ हुआ और एक बार जो लिखने का सिलसिला शुरू हुआ सो बस मौत के द्वारा कलम छीन लेने के बाद ही बंद हुआ। जब तक वे सरकारी मुलाजिम रहे उन्हें जगह-जगह तबादले पर जाने के कारण हर तरह के लोगों को देखने और सुनने का मौका मिला। जब उन्होंने सरकारी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया उसके बाद भी जिंदगी के मुख्य प्रवाह से वे जुड़े रहे। प्रेमचंद

को जीने के लिए जिंदगी के केवल छप्पन साल मिले और लिखने के सिर्फ तीस साल। इन तीस सालों में उन्होंने कोई बारह छोटे-बड़े उपन्यास, तीन सौ के लगभग कहानियां और ढेर सारा विचारात्मक साहित्य, लेख, संपादकीय टिप्पणियां आदि लिखीं। उनका सारा साहित्य देश की गुलामी के खिलाफ अहिंसक लड़ाई है। वे भारत में अंग्रेजीराज के कटुतम आलोचक थे। प्रेमचंद ने अपने साहित्यिक जीवन की शुरुआत उर्दु से की। अमृतराय ने उनकी जीवनी 'प्रेमचंद : कलम का सिपाही' के परिशिष्ट-2 में प्रेमचंद की कहानियों का काल-निर्देश किया है। उसके अनुसार हिंदी में प्रेमचंद की पहली कहानी (सोत) दिसंबर 1915 में 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई जिसमें दिखाया गया था कि ग्रामीण जनता पंचायत की मदद से अपने झगड़ों का फैसला कर सके तो उसकी अनेक समस्याएं हल हो सकती हैं। परिशिष्ट-2 में दी गई इस तालिका के पता चलता है कि प्रेमचंद ने उर्दु-हिंदी में कुल मिलाकर 300 कहानियाँ लिखीं। अधिकाँश कहानियाँ ग्रामीण जीवन-स्थितियों और समस्याओं से सम्बंधित हैं। अछूत समस्या भी इन समस्याओं में से एक है। प्रेमचंद के साहित्य में अछूत समस्या : भारत में अछूत समस्या बहुत लम्बे समय से विद्यमान है। इस समस्या पर अनेक साहित्यकारों ने अपनी लेखनी चलाई है। प्रेमचंद ने संवेदना की गहराई से इसका जीवंत चित्रण किया है। अपने उपन्यासों के अलावा अपनी अनेक कहानियों में प्रेमचंद ने नारकीय परिवेश को प्रस्तुत किया है। इस अछूत कहे जाने वाले समाज से भी प्रेमचंद ने कुछ बड़े प्यारे स्त्री पुरुष पात्र हमें दिए हैं। 'मंत्र' कहानी का बूढ़ा भगत

अछूत वर्ग का ही है, और 'रंगभूमि' का सूरदास भी जो प्रेमचंद की कलम से रचा सिरजा एक महाकाव्यात्मक चरित्र है। मुन्नी और सलोनी भी अछूत वर्ग की स्त्रियाँ हैं जो हमारे गर्व का विषय बनती हैं। कहने का तात्पर्य यह की आदमीयत के तकाजे को सबसे बड़ा तकाजा मानने वाले प्रेमचंद ने अछूतों को उनकी बुनियादी समस्याओं की मर्त्सना की है, उन्हें बेनकाब किया है जो उनकी इस अभिव्यक्ति नियति की जिम्मेदारी है। उनका संबंध धर्म से हो, व्यक्ति से हो, या संस्थाओं और समुदायों से। अछूत प्रथा हिन्दू समाज की एक ऐसी बुराई है जो उसे दुनिया के अन्य समाजों से भिन्न अथवा 'विशिष्ट' बनाती है। डॉ. भीमराव आंबेडकर की एकमात्र पुस्तक 'अछूत क्यों और कैसे' को छोड़कर एक भी पुस्तक ऐसी नहीं जिसमें अछूत प्रथा के उद्गम और विकास के बारे में व्यवस्थित ढंग से जानकारी देने की कोशिश की गई हो। अम्बेडकर ने उपर्युक्त पुस्तक एक चुनौती के रूप में लिखी थी। उन्हें आशा थी की उनके विरोधी विद्वान उनके मत को चुनौती देते हुए इसे पूरी तरह उपेक्षित विषय पर अपने सिद्धांत प्रतिपादित करेंगे और विचारों के आदान-प्रदान का यह सिलसिला भविष्य में किसी शोध को सही दिशा में ले जाने में मदद देगा। उनकी यह आशा पूरी न हो सकी। अछूत प्रथा और अछूत जातियों का स्वरूप : अछूत प्रथा और अछूत जातियों के अस्तित्व के पुराने हवाले भारत में विदेशी पर्यटकों के यात्रावृत्तांतों में मिलते हैं। 1 संस्कृत काव्यों 2, और धर्मग्रंथों 3 में भी इनके हवाले मिलते हैं। भारतीय इतिहासकारों द्वारा भारतीय इतिहास के अलग-अलग युगों पर लिखे गये इतिहासों में

जनता की जीवन-स्थितियों के वर्णन के अंतर्गत भी ये हवाले मिलते हैं। 4 इन हवालों से इस पर तो रोशनी पड़ती है कि किसी काल विशेष में अछूत की जिंदगी किस तरह की थी, लेकिन इन सवालों के जवाब नहीं मिलते कि ये लोग अछूत कब और किस हालात में बने ? विभिन्न धर्मग्रंथों का अध्ययन करके कुछ विद्वानों ने उन परिस्थितियों की जांच करने की कोशिश की है जिन में उच्च वर्णों और वंशों के लोग चांडाल या श्वपच बनने पर विवश हुए, लेकिन ये अध्ययन विशेष रूप से नहीं किये गए और इनसे अछूत प्रथा के जन्म और विकास की पूरी कहानी सामने नहीं आती। अछूतों से सम्बंधित जानकारी ब्रिटिश जनगणना अधिकारियों, विद्वानों तथा सामाजशास्त्रियों के ग्रंथों में भी मिलती है, लेकिन उनसे भी हमें अछूत प्रथा के जन्म और विकास को समझने के लिए कोई ऐतिहासिक दृष्टि नहीं मिलती। कुल मिलाकर हम विषय पर प्राप्त अब तक का साहित्य अछूत प्रथा के जन्म और विकास के बारे में अध्येता को कोई दृष्टि नहीं देता बल्कि उसे उलझाता ही है। इसका एक कारण तो यह है कि, डॉ. आंबेडकर की पुस्तक को छोड़कर, यह साहित्य अछूत प्रथा पर नहीं लिखा गया, बल्कि प्रतिपाद्य विषय से कभी पास का, और अधिकतर दूर का संबंध रखने के कारण लेखकों ने चलते-चलते अछूत प्रथा पर भी कुछ कह दिया है। इसमें शक नहीं कि भारत में अछूतों की जीवन-स्थितियों के बारे में सभी प्रत्यक्षदर्शियों के विवरण अछूत प्रथा के जन्म और विकास के अध्येताओं के लिए अमूल्य सामग्री है, लेकिन इस प्रचुर सामग्री का विश्लेषण करके अछूत प्रथा के ऐतिहासिक विकास और मूल्यांकन का काम अभी बाकी ही है।

एक पत्रकार और विचारक की हैसियत से प्रेमचंद ने अपने पत्रों – मासिक 'हंस' और साप्ताहिक 'जागरण' – अपने युग की अछूत समस्या के विभिन्न पहलुओं पर जम कर लिखा। विविध प्रसंग-2 में पृष्ठ संख्या 437 से 477 तक 'छूत-अछूत' शीर्षक से योग्य सामग्री संकलित की गयी थी। पृथक निर्वाचन के सवाल पर गांधीजी ने यरवदा जेल में आमरण 'अनशन शुरू किया तब से अछूत समस्या भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की एक प्रमुख समस्या बनी और तभी से प्रेमचंद ने इस समस्या पर लगातार लिखना शुरू किया। यह बात गौरतलब है कि प्रेमचंद की कहानियों और उपन्यासों में अछूत और पिछड़ी हुई जातियों के पात्रों के माध्यम से अछूत समस्या के विभिन्न पहलुओं का चित्रण बहुत पहले से मिलता है, लेकिन एक पत्रकार या विचारक की हैसियत से इस समस्या पर उनका ध्यान 1932 के दौरान ही केन्द्रित हुआ। हांलाकि एक पत्रकार के रूप में दूसरों के अखबारों में वह बराबर लिखते रहे थे। राष्ट्रीय दृष्टिकोण

प्रेमचंद भारत की अछूत समस्या को शुरू से ही राष्ट्रीय दृष्टिकोण के रूप में देख और समझ रहे थे। 'विविध प्रसंग' में इस समस्या का पहला उल्लेख 'हंस' के अक्टूबर अंक के संपादकीय में मिलता है, और इससे अछूत समस्या पर उनका दृष्टिकोण पूरी तरह स्पष्ट हो जाता है, "भारत का उद्धार अब इसीमें है कि राष्ट्रीय-धर्म के उपासक बनें, विशेष अधिकारों के लिए न लड़कर, समान अधिकारों के लिए लड़ें, हिंदू या मुसलमान, अछूत या ईसाई बनकर नहीं, भारतीय बनकर संयुक्त उन्नति की ओर अग्रसर हों, अन्यथा हिंदू, मुसलमान, अछूत और सिक्ख सब रसातल को चले जायेंगे।"5 इसी पैराग्राफ में कुछ पंक्तियां बाद

वह अपनी इसी बात को दुहराते हैं : हम मसजिद में जाएं या मंदिर में, हिंदी पढ़े या उर्दू, धोती बांधे या पाजामा पहनें, हम स्वाधीन हैं, लेकिन धर्म के नाम पर राष्ट्र को भिन्न-भिन्न दलों में विभक्त करना, ईश्वर और मनुष्य के संबंधों को राष्ट्रीय मामलों में घसीट लाना, राष्ट्रीय भारत कभी गवारा न करेगा... संपूर्ण भारत का हित एक है, उसमें कोई विभिन्नता नहीं है। 6स्पष्ट है कि भारतीय पूंजीपति वर्ग सिद्धांततः सांप्रदायिक निर्णय और विभाजन को मान चुका था और अछूतों के लिए पृथक् निर्वाचन का विरोध वह इस बजह से कर रहा था क्योंकि उन्हें वह हिंदू संप्रदाय का एक हिस्सा मानता था। अछूत समस्या पर गांधीजी और प्रेमचंद के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन मनोरंजक और शिक्षाप्रद है। इसी बीच प्रेमचंद ने गांधीजी के हरिजनोद्धार कार्य का सौ फीसदी समर्थन किया। पूना समझौते पर 26 सितंबर 1932 के 'जागरण' में 'हमारा कर्तव्य' शीर्षक संपादकीय में गांधीजी के विचार उद्धृत करते हुए प्रेमचंद ने देशवासियों की सलाह दी कि "देश के प्रत्येक समझदार व्यक्ति का कर्तव्य इस समय यही है की महात्माजी के इस बच्चों पर ध्यान दें, विचार करें और उन्हें आचरण में लाकर देश और धर्म के कलंक को दूर करें" 7 इसमें प्रेमचंद का योगदान यह है कि गांधीजी का जो उद्धारण उन्होंने इन पंक्तियों से फौरन पहले दिया है उसमें हिंदू धर्म की बात की गयी है, प्रेमचंद ने 'देश' अपनी तरफ से जोड़ दिया है। नवंबर 1932 में काशी के सनातनधर्मी नेताओं ने अछूतों के मंदिर प्रवेश के विरुद्ध जुलूस निकाला तो प्रेमचंद 'जागरण' के 21 नवंबर 1932 अंक में संपादकीय में उन पर बरस पड़े। गांधीजी अपने

इन विरोधियों के साथ बड़ी शालीनता से पेश आते थे और उनसे हर समय बातचीत करने के लिए तैयार रहते थे। लेकिन, प्रेमचंद इस मामले में इतने सहिष्णु न थे। उन्होंने पुरी के शंकराचार्य के नेतृत्व में निकले इस जुलूस को 'जाती के दलित और पीड़ित अंग को ठोकरें मारने' वालों की संज्ञा देते हुये लिखा, "फिर क्यों न धर्म का संसार में ह्रास हो, क्यों न रूस वाले धर्म को अफीम का नशा समझें, क्यों न गिरजे ढाये जाएँ और धर्म को कलंकित करने वाले इन स्तंभों का समाज से बहिष्कार कर दिया जाय। 8 गांधीजी इन तत्वों के मत परिवर्तन और हृदय-परिवर्तन की कोशिश कर रहे थे। उनके सामाजिक बहिष्कार की बात उनकी कल्पना में न थी। यह उग्रता प्रेमचंद की मौलिकता है। अपने संपादकीय में प्रेमचंद ने धर्म का मूल तत्व तो गांधीजी के शब्दों में 'आत्मा की एकता' माना लेकिन साथ में यह टिप्पणी भी जोड़ दी, "जो आदमी इस तत्व को नहीं समझता, वह वेदों और शास्त्रों का पंडित होने पर भी मूर्ख है, जो दुःखियों के दुःख से दुःखी नहीं होता, जो अन्याय देखकर उत्तेजित नहीं होता, जो समाज में, ऊंच-नीच, पवित्र-अपवित्र के भेद को बढ़ता है, वह पंडित होकर भी मूर्ख है।" यह उग्रता गांधीजी के समर्थन में होते हुये भी उनके चिंतन या व्यवहार से मेल नहीं खाती। इस संपादकीय के अंत में प्रेमचंद जिस तरह अछूतों के प्रति अपनी पक्षधरता और परोपजीवी ब्राह्मण निहित स्वार्थों के प्रति अपनी घृणा व्यक्त करते हैं वह गांधीजी के सम्पूर्ण साहित्य में ढूंढे नहीं मिलती। वे आगे कहते हैं "किसी ब्राह्मण महाजन के पास उसी का भाई ब्राह्मण आसामी कर्ज मांगने जाता है, ब्राह्मण महाजन एक पाई भी नहीं देता, उस पर उसका

विश्वास नहीं है। उसी ब्राह्मण महाजन के पास एक अछूत आसामी जाता है और बिना किसी लिखा-पढ़ी के रुपये ले आता है। ब्राह्मण को उस पर विश्वास है। वह जानता है, यह बेईमानी नहीं करेगा। ऐसे सत्यवादी, सरल हृदय, भक्ति-पारायण लोगों को हम अछूत कहते हैं, उनसे घृणा करते हैं, मगर हमारा विश्वास है, हिन्दू समाज की चेतना जागृत हो गयी है, अब वह ऐसे अन्यायों को सहन न करेगा। राष्ट्रों के जीवन का रहस्य उसकी समझ में आ गया है, वह ऐसी नीति का साथ न देगा, जो उसके जीवन की जड़ काट रही है।“

गुरुवायुर में अछूतों के मंदिर प्रवेश को लेकर जब केलघन के आह्वान पर महात्मा गांधी ने फिर उपवास का इरादा जाहिर किया तब प्रेमचंद ने 5 दिसंबर 1932 के 'जागरण' में अपने संपादकीय में उसका समर्थन करते हुए भी इतना जरूर कहा, 'महात्माजी की इस दार्शनिकता को जरा हम कठिनाई से समझ सकते हैं। इसी अंक में प्रेमचंद की यह छोटी-सी टिप्पणी छोटी होते हुए भी बहुत महत्वपूर्ण है और किसी टीका की दरकार नहीं रखती: "नागपुर में हरिजन बालकों के लिए अलग एक छात्रालय बनाया गया है। इससे तो अछूतपन मिटेगा नहीं, और दृढ़ होगा। उन्हें तो साधारण छात्रालयों के बिना किसी विचार के स्थान मिलना चाहिए। 9 'जागरण' के 26 दिसंबर 1932 के अंक का संपादकीय 'पावन तिथि' कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। इसमें प्रेमचंद सभी धर्मों के मूल तत्व 'मनुष्य-मात्र की समानता' में अपनी बात शुरू करते हैं और इसे रेखांकित करते हुए कहते हैं, '... धर्मों की सृष्टि का यही उद्देश्य था। इसी एक व्यवस्था में जब मानव-समाज में छोटे-बड़े, ऊंच-नीच, का भेद बढ़ा, एक नये धर्म का

उदय हुआ। इस तत्व की उपेक्षा करके समाज में शांति नहीं रह सकती। या तो किसी नये धर्म की सृष्टि होगी या कोई भयंकर विप्लव हो जाएगा। फ्रेंच-क्रांति इसी विषमता की फरियाद थी, रूस की क्रांति भी इसी भेद-भाव का रुदन था। मनुष्य-मात्र में जो एक आत्मा व्याप्त है, वह इस विषमता को सहन नहीं कर सकती।¹⁰ इसके बाद प्रेमचंद 'धर्म भेद नहीं सिखाता' उपशीर्षक के अंतर्गत महात्मा गांधी के उनके कथनों को उद्धृत करते हुए मनुष्य-मनुष्य की एकता साबित करते हैं।

अछूत समस्या और आर्थिक पक्ष : संपादकीय का तीसरा और अंतिम उपशीर्षक है, 'मंदिर प्रवेश ही इस समस्या को हल करेगा'। इस भाग में प्रेमचंद ने पहली बार अछूत समस्या के आर्थिक पक्ष को रेखांकित किया है: हरिजनों की समस्या केवल मंदिर प्रवेश से हल होने वाली नहीं है। उस समस्या की आर्थिक बाधाएं धार्मिक बाधाओं से कहीं कठोर हैं। असल समस्या तो आर्थिक है। यदि हम अपने हरिजन भाईयो को उठाना चाहते हैं तो हमें ऐसे साधन पैदा करने होंगे जो उन्हें उठने में मदद दें। विद्यालयों में उनके लिए वजीफे करने चाहिए, नौकरियां देने में उनके साथ थोड़ी-सी रियायत करनी चाहिए। हमारे जमींदारों के हाथ में उनकी दशा सुधारने के बड़े-बड़े उपादान हैं। उन्हें घर बनाने के लिए काफी जमीन देकर, उनसे बेगार लेना बंद करके, उनसे सज्जनता और भलमनसी का बरताव करके वे हरिजनों की बहुत कुछ कठिनाइयां दूर कर सकते हैं। समय तो इस समस्या को आप ही हल करेगा, पर हिंदू जाति अपने कर्तव्य से मुंह नहीं मोड़ सकती।¹¹ देखने की बात है कि 1932 में प्रेमचंद महात्मा गांधी द्वारा प्रवर्तित मंदिर प्रवेश

सत्याग्रह का बिना शर्त समर्थन भी कर रहे हैं और डंके की चोट यह भी कह रहे हैं कि अछूतों की असल समस्या आर्थिक है और उसे सुलझाए बिना अछूत समस्या का समाधान नहीं हो सकता। गांधीजी ने अपने विरोधी सनातनी पंडितों के विरुद्ध यह कार्यनीति अपनायी थी कि वह हिंदू शास्त्रों के ही आधार पर यह साबित करते थे कि अछूत प्रथा हिंदू धर्म का अंग नहीं है, बल्कि बाद में जोड़ा गया क्षेपक है और हिंदू धर्म से इस कलंक को धो डालने से हिंदू धर्म पवित्र हो जायगा। 23 जनवरी 1933 के 'जागरण' में प्रेमचंद ने भी मनुस्तमूति सहित अनेक शास्त्रों से उद्धरण देते हुए यह सिद्ध किया कि अछूत प्रथा शास्त्रानुकूल नहीं है।¹² 'जागरण' के 'अस्पृश्यों की महात्वाकांक्षा' शीर्षक संपादकीय में उन्होंने लिखा: "हमारे पास कलंत आश्रम, जाफराबाद के हरिजनसेवक श्री हरिजनदास कलंत का एक पत्र आया है जिसमें वे लिखते हैं कि, 'आज मैं वर्षों से हरिजनों की सेवा में ही अपना प्राण लगा रहा हूं। मेरा यह अनुभव है कि हरिजन मंदिर-प्रवेश के लिए इतने उत्सुक नहीं हैं। जितना अपनी आर्थिक दशा सुधारने के लिए। वे चाहते हैं कि अपने गृह-उद्योग द्वारा वे स्वतंत्र हो जायें। उनकी माली हालत सुधरे। इसलिए हम चाहते हैं कि मशीनरी की उत्पत्ति पर कर लगा दिया जाये। गृह-उद्योग तभी पनपेगा और हम तभी सुखी हो सकेंगे।' हरिजनों के इन उदार विचारों के लिए हम उन्हें बधाई देते हैं। फिर भी, वे चाहें या न चाहें, हम उन्हें मंदिर प्रवेश का अधिकार देना ही चाहते हैं। रह गयी गृह-उद्योग की बात। इस विषय में उनके विचारों का हम समर्थन करते हैं। जब उनके पास पैसा होगा तो भोजन-भट्ट ब्राह्मण और भिक्षु-विप्र भी उनकी उन्नत मानने

लगेगे।¹³ लेकिन, धीरे-धीरे प्रेमचंद दो बातों पर आवश्यक होते जा रहे थे। एक तो यह कि अछूत प्रथा 'पवित्र' हिंदू धर्म को भ्रष्ट करने के लिए बाद में ऊपर से थोपा गया क्षेपक नहीं है, बल्कि इसकी जड़ में ऐसे आर्थिक संबंध है जो निहित स्वार्थों के पक्ष और मेहनतकश तबकों के विरुद्ध है और दूसरे यह कि निहित स्वार्थ होने के कारण इन तत्त्वों के हृदय-परिवर्तन की उम्मीद कम है, इन पर सीधे आक्रमण करना जरूरी है। सवर्ण बनाम अछूत : धार्मिक अंधविश्वास और कठमुल्लापन की ताकतें न सिर्फ गांधीजी पर हमला कर रही थी बल्कि प्रेमचंद जैसे उनके समर्थक भी इन हमलों का निशाना बन रहे थे। गांधीजी उनके मत-परिवर्तन और हृदय-परिवर्तन की आशा लगाए हुए थे, लेकिन प्रेमचंद का सब्र का प्याला भर चुका था। धर्म के संस्थागत रूप और सगुणीपासना या मूर्ति पूजा के प्रेमचंद शुरु से ही विरोधी थे, अब उन्होंने इन धार्मिक निहित स्वार्थों पर अपना प्रत्याक्रमण और तेज कर दिया। दिसंबर 1933 के 'हंस' में उन्होंने 'जीवन और साहित्य में घृणा का स्थान' शीर्षक संपादकीय लिखा। जीवन में घृणा हो उतनी ही कल्याणकारी होगी। घृणा को शिथिल होने से ही हम बहुधा स्वयं उन्हीं बुराइयों में पड़ जाते हैं और स्वयं वैसा ही घृषित व्यवहार करने लगते हैं। जिसमें प्रचंड घृणा है, वह जान पर खेलकर भी उनसे अपनी रक्षा करेगा और तभी उनकी जड़ खोदकर फेंक देने में वह अपने प्राणों की बाजी लगा देगा। महात्मा गांधी इसलिए अछूतपन को मिटाने के लिए अपने जीवन का बलिदान कर रहे हैं कि उन्हें अछूतपन से घृणा है।"¹⁴

सम्पादकिय के उत्तरार्द्ध में 'साहित्य और कला में

घृणा की उपयोगिता बताते हुए उन्होंने लिखा, “प्राचीन साहित्य धर्म और ईश्वरद्रोहियों के प्रति घृणा और अनेक अनुयायियों के प्रति श्रद्धा और भक्ति के भावों की सृष्टि करता रहा। जीवन साहित्य समाज का खून चूसने वालों, रंगे सियारों, हथकंडेबाजों और जनता के अज्ञान से अपना स्वार्थ सिद्ध करने वालों के विरुद्ध उतने ही जोर से आवाज उठा रहा है और दोनों, दलितों, अन्याय के हाथ सताये हुएों के प्रति उतने ही और से सहानुभूति उत्पन्न करने का प्रयत्न कर रहा है।”¹⁵ जब इन विरोधियों के हमलों में कोई कमी न आयी तो 8 जनवरी 1934 के ‘जागरण’ में प्रेमचंद ने और भी कटु होते हुए ‘क्या हम वास्तव में राष्ट्रवादी हैं?’ शीर्षक से एक लंबा लेख लिखा। इस में धार्मिक अंधविश्वास की ताकतों पर सीधा हमला बोलते हुए उन्होंने लिखा : शिकायत है कि हमने अपनी तीन-चौपाई कहानियों में ब्राह्मणों को काले रंगों से चित्रित करके अपनी संकीर्णता का परिचय दिया है, जो हमारी रचनाओं पर अमिट कलंक है। हम कहते हैं कि अगर हममें इतनी शक्ति होती, तो हम अपना सारा जीवन हिंदू-जाति को पुरोहितों, पुजारियों, पंडों और धर्मोपजीवी कीटाणुओं के मुक्त कराने में अर्पण कर देते। हिन्दू-जाति का सबसे घृणित कोढ़, सबसे लज्जाजनक कलंक यही टकेपंथी दल है, जो एक विशाल जोंक की भांति उसका खून चूस रहा है, और हमारी राष्ट्रियता के मार्ग में यही सबसे बड़ी बाधा है।¹⁶ सम्पूर्ण गांधी साहित्य या अन्य गांधीवादी चिंतकों के साहित्य में इस ‘टकेपंथी दल’ पर ऐसा प्रचंड आघात ढूँढे नहीं मिलता। गांधीजी सनातनी ब्राह्मणों के इस आचरण को हिन्दू धर्म-शास्त्र विरोधी तो जरूर मानते थे लेकिन ‘राष्ट्रियता में सबसे बड़ी बाधा’

नहीं। इस ‘टकेपंथी दल’ पर प्रेमचंद के कोप का मुख्य कारण यह लगता है कि यह काहिल और गुप्तखोर है। उत्पादन में इसकी कोई भूमिका नहीं, फिर भी धर्म के बल पर यह उसका एक महत्वपूर्ण हिस्सा खा जाता है और उत्पादक शक्तियों पर ही गुरांता है: राष्ट्रवाद ऐसे उपजीवी समाज को घातक समझता है और समाजवाद में तो उसके लिए स्थान ही नहीं। और हम जिस राष्ट्रियता का स्वप्न देख रहे हैं, उसमें तो जन्मगत वर्णों की गंध तक न होगी, वह हमारे श्रमिकों और किसानों का साम्राज्य होगा, जिसमें न कोई ब्राह्मण होगा, न अछूत, न कायस्थ, न क्षत्रिय। उसमें सभी भारतवासी होंगे, सभी ब्राह्मण होंगे, या सभी अछूत होंगे। ‘जन्मगत वर्णों’ को मनाने के पक्ष में तो गांधीजी भी नहीं थे, लेकिन ‘श्रमिक और किसानों के साम्राज्य’ की कल्पना गांधीजी की नहीं, प्रेमचंद की निजी कल्पना है। अपने सात्विक आक्रोश में प्रेमचंद एक और गांधीजी सीमा का अतिक्रमण कर जाते हैं। “हमारा स्वराज्य केवल विदेशी जुए से अपने को मुक्त करना नहीं है, बल्कि हम सामाजिक जुए से भी, इस पाखंडी जुए से भी, जो विदेशी शासन से कही घातक है, और हमें आश्चर्य होता है कि निर्मलजी और उनकी मनोवृत्ति के अन्य सज्जन कैसे इस पुरोहिती शासन का समर्थन कर सकते हैं।”

गांधीजी का कहना था कि हिन्दू लोग अछूतों को स्वराज्य देकर ही अंग्रेजों से स्वराज्य की मांग करने के हकदार बन सकते हैं ? लेकिन, प्रेमचंद इस पूरे सवाल को इस अंदाज से रखते हैं कि सामाजिक स्वाधीनता के बिना राजनीतिक स्वाधीनता का कोई मतलब ही नहीं। लेख समाप्त करते हुए प्रेमचंद निर्मल को इन इन शब्दों में

सलाह देते हैं : पुरोहितों के प्रभुत्व के दिन अब बहुत थोड़े रह गये हैं और समाज और राष्ट्र की भलाई इसी में है की जाति से यह भेद-भाव, यह एकांगी प्रभुत्व, यह खून चूसने की प्रवृत्ति मिटायी जाय, क्योंकि जैसा हम कह चुके हैं, राष्ट्रीयता की पहली शर्त वर्णव्यवस्था, ऊँच-नीच के भेद और धार्मिक पाखंड की जड़ खोदना है।" परोपजीवी तत्वों द्वारा बड़ी सावधानी से रचे गये शोषण तंत्र के विरुद्ध यह खुला विद्रोह है, गांधीवादी हृदय-परिवर्तन की कार्यनीति से इसका कोई लेना-देना नहीं।

प्रेमचंद का गांधीवाद को अलविदा इस बिंदु पर प्रेमचंद अछूत समस्या पर गांधीवादी प्रभामंडल के बाहर आते नजर आते हैं, हालांकि अछूतोंद्वारा के उनेक सभी प्रयत्नों को पूरा-पूरा समर्थन देते समय भी वह इसे धार्मिक या नैतिक नहीं बल्कि शुद्ध राष्ट्रीय-राजनीतिक दृष्टि से देखते आ रहे थे और गांधीजी की तुलना में अछूत समस्या की आर्थिक अंतर्वस्तु को कहीं अधिक स्पष्टता और दृढ़ता से रेखांकित कर रहे थे। लेकिन, वह चट्टान जिस पर गांधीवाद में उनकी आस्था टूटती है भारतीय पूंजीवादी नेतृत्व की वह केंद्रीय कमजोरी है जो उसे विचारधारा के क्षेत्र में जाति-प्रथा और 'टकेपंथी परोपजीवी' ब्राह्मणों के वर्चस्व के विरुद्ध निर्भीक और निर्णायक रूप से लड़ने के रोकती हैं और उत्पादन संबंधों में भूमि की इजारेदारी के खिलाफ संघर्ष करने से। प्रेमचंद 1930 के बाद से ही जवाहरलाल नेहरू 17 तथा अन्य वामपंथी व्यक्तियों और मार्क्सवादी चिंतन से प्रभावित होने लगे थे और 1933-34 तक आते-जाते वह भारतीय परिस्थितियों में जाति के भीतर निहित वर्ग-तत्त्व को भी समझने लगे थे। इसके बाद जाति-प्रथा से समझौते की कोई

गुंजाइश नहीं रह जाती। इसके बाद सामंतवाद के समझौता करनेवाले पूंजीवादी नेतृत्व का प्रभामंजल आकर्षक नहीं रह जाता। 1934 में बिहार के प्रलयकारी भूकंप ने रही-सही कसर पूरी कर दी। गांधीजी ने देश के सवर्ण के पापों के कारण ईश्वरीय प्रकोप कहा और सनातनियों ने इसे हरिजनों को मंदिरों में आने के लिए ईश्वरीय दंड की संज्ञा दी। प्रेमचंद की वैज्ञानिक दृष्टि इस आडंबर को सहन नहीं कर सकी। उनके कोप का भाजन सनातनी भी बने, गांधीजी भी और ईश्वर भी। 18 जब ईश्वर का ही भय न रहा जो उस 'ईश्वरीय प्रेरणा' का क्या लिहाज रह सकता था जो गांधीजी की 'सबसे बड़ी शक्ति' थी। 19 बहुत बड़ी हद तक प्रेमचंद इसी कारण तो गांधीजी के प्रभाव में थे। लिहाजा, 'जागरण' के 16 अप्रैल 1934 के 'ठेलमठेला' शीर्षक संपादकीय में प्रेमचंद ने उसका भी मजाक उड़ाया और निम्नलिखित शब्दों के साथ गांधीवाद को अलविदा कह दिया : महात्माजी ने कांग्रेस के नेताओं पर सत्याग्रह सिद्धांत को गलत रूप में जनता तक पहुंचाने का इलजाम लगाकर व्यर्थ ही उनकी दिल-शिकनी की। महात्माजी को खुद आज से तेरह साल पहले सोच लेना चाहिए था, कि जिन लोगों के हाथ में हम यह अमोघ अस्त्र दे रहे हैं, वे इसे चला भी सकते हैं या नहीं। क्या महात्माजी ने उस वक्त यह समझा था कि वे सभी देवता हैं ? अगर वह मानव स्वभाव से इतने बेखबर हैं, तो यह उनका कसूर है जो एक राष्ट्र के नेता में बहुत बड़ा कसूर है। अब यह मान लेना पड़ेगा कि जिस चीज को महात्माजी भीतर की आवाज कहते हैं, जिसका मतलब यह होता है कि उसके गलत होने की संभावना नहीं, वह बहुत भरोसे की चीज नहीं है, क्योंकि उसने उसके एक से ज्यादा अवसरों पर

गलती की हैं। भविष्य में हमें राजनीति को राष्ट्रहित की दृष्टि से देखना होगा।²⁰ समारोप

1931 से 1934 तक अछूत पर प्रेमचंद के विचारों के इस संक्षिप्त विश्लेषण से हम निम्न निष्कर्षों पर पहुंचते हैं:

(1) यह एक ऐसा दौर था जब कि अछूत समस्या भारतीय राजनीति और राष्ट्रीय आंदोलन की एक प्रमुख समस्या बनी। प्रेमचंद एक पत्रकार की हैसियत से इस पूरे परिदृश्य की राष्ट्रीय नजरिये से बहुत नजदीक से, देख रहे थे।

(2) 1930-34 के दौरान राष्ट्रीय आंदोलन की तीसरी लहर में भारत के सर्वहारा वर्ग और समाजवादी शक्तियों ने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। इन शक्तियों का तकाजा था कि कांग्रेस का समझौतापरस्त नेतृत्व साम्राज्यवाद तथा सामंतवाद के विरुद्ध समजौताहीन संघर्ष करे। प्रेमचंद धीरे-धीरे शक्तियों को पहचान रहे थे। इन शक्तियों ने समाज सुधार आंदोलन को कृषि क्रांति के कार्य-भारों से जोड़ा। अछूत समस्या पर प्रेमचंद के विचारों की निम्न दो विशेषताएं इन्हीं शक्तियों के प्रभाव से आयी :

क. अछूत समस्या की आर्थिक अंतर्वस्तु को रेखांकित करना, और

ख. जाति की वर्गीय अंतर्वस्तु को पहचानकर उच्च जातियों, खासकर वर्चस्ववादी ब्राह्मण जाति द्वारा अछूतों के आर्थिक और सामाजिक उत्पीड़न का हटकर विरोध करना।

(3) इस दौर में भारतीय जनता के सामने दो नहीं बल्कि निम्नलिखित तीन ऐसे विकल्प थे जो अछूत समस्या के समाधान के दावेदार थे

क. जाति-प्रथा को जन्म से, और ऊंच-नीच के अलग करके तथा अछूत जातियों के प्रति समता,

सम्मान और बंधुता के व्यवहार की मदद से अछूत प्रथा को खत्म करना संभव है और इससे हिन्दू धर्म भी पवित्र हो जाएगा। इसके प्रमुख प्रवक्ता गांधीजी थे।

ख. जाति-प्रथा के रहते अछूत प्रथा का अन्मूलन संभव ही नहीं। अछूत जातियां संगठित होकर और इस दानवी प्रथा के विरुद्ध संघर्ष करके ही प्रगति कर सकती हैं। इसके प्रमुख प्रवक्ता डॉ. आंबेडकर थे।

ग. अछूत समस्या और जाति प्रथा के विरुद्ध संघर्ष अनिवार्यतः कृषि क्रांति के लिए और साम्राज्यवादविरोधी संघर्ष का अभिन्न अंग है। इसकी मुख्य धार सामंतवाद और साम्राज्यवाद के विरुद्ध है। इसकी मुख्य प्रवक्ता भारत की कम्युनिस्ट पार्टी और जवाहरलालने नहेरु आदि वामपंथी नेता थे।

इन तीनों विकल्पों को लेकर प्रेमचंद की स्थिति बड़ी दुविधा की थी। अपने साम्राज्यवादविरोधी-समन्तवादविरोधी दृष्टिकोण के चलते वह जाति प्रथा का समर्थन नहीं कर सकते थे। प्रेमचंद के मानसिक विकास को देखते हुए तीसरा विकल्प निश्चित रूप से पेश करनेवाली शक्तियां साम्राज्यवाद और सामंतवाद के विरुद्ध भारतीय जनता के संघर्षों को नेतृत्व देने की स्थिति में न थी। 1920 के बाद गांधीजी के रूप में भारत के समजौतापरस्त पूंजीपति वर्ग ने इस संघर्ष के नेतृत्व पर अपनी गिरपट कड़ी कर ली थी और कम से कम 1930-34 के दौरान, जबकि राष्ट्रीय संघर्ष एक अभूतपूर्व उत्कर्ष और तनाव की स्थिति से गुजर रहा था, प्रेमचंद जैसे राष्ट्रीय दृष्टिकोणवाले साहित्यकार-पत्रकार के लिए गांधीजी से उसका विश्लेषण करते हुए अपने विरोध को सामने संभव था। प्रेमचंद ने यहीं



किया।

अपने सर्जनात्मक साहित्य में, जहां कि लेखक अछूत समस्या के चित्रण में गांधीवादी सीमाओं संदर्भ

से बाहर निकल आने के लिए अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्र था, प्रेमचंद अछूत समस्या संबंधी अपनी इन मान्यताओं पर कहां तक कायम रह सके हैं।

1. हर्ष एंड हीज टाइम्स, पृ.398; मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, पृ.38
2. हर्ष एंड हीज टाइम्स, पृ.340
3. इंडिया इन द टाइम्स ऑफ पतंजलि, पृ.90-91; धर्मशास्त्र का इतिहास (प्रथम भाग) पृ.167-171
4. वैदिक इंडिया, पृ.287; बुद्धिस्ट इंडिया, पृ.28; असपेक्टस ऑफ अंशिगंट इंडियन कल्चर, पृ.8
5. विविध प्रसंग-2, पृ. 273
6. वही, पृ. 374
7. वि. प्र. 2, पृ.442
8. वही, पृ. 447
9. वही, पृ. 450
10. वही, पृ. 452
11. वही, पृ. 455
12. वही, पृ. 455-457
13. वही, पृ. 457-458
14. वि.प्र. 1, पृ. 56-57
15. वही, पृ. 57
16. वि. प्र. 2, पृ. 471
17. वही, पृ. 222-225
18. वही, पृ. 233,235,236,242,243
19. वही, पृ. 166,167
20. वही, पृ. 257-58